जामिया मिलिया इस्लामिया में नयी तालीम

❑ प्रो. मोहम्मद तालिब

प्रो. मोहम्मद तालिब जामिया मिलिया इस्लामिया, नयी दिल्ली के समाज शास्त्र विभाग में कार्यरत हैं । 'पत्थर खदान मजदूरों के बच्चों का समाज - शास्त्रीय अध्ययन' उनका पी.एच.डी. के शोध-प्रबन्ध का विषय था। जामिया मिलिया इस्लामिया में, डॉ. जाकिर हुसैन के नेतृत्व में बुनियादी शिक्षा को लेकर जो काम हुआ था, उस पर उनका अध्ययन है । जामिया में बुनियादी शिक्षा की परंपरा को लेकर इन्होंने स्वयं भी नवाचार किया। 'सहभागी समाजशास्त्र' को लेकर इन्होंने एक कार्यक्रम शुरू किया है । हाल में प्रकाशित 'प्रॉब' रिपोर्ट (पब्लिक रिपोर्ट ऑन बेसिक एजुकेशन इन इंडिया, ऑक्सफोर्ड - 1998) में इनका लेख 'क्लास विदिन द क्लास रुम' छपा है । दिगन्तर व्याख्यानों के अन्तर्गत 'बुनियादी शिक्षा' पर यह दूसरा व्याख्यान है। इससे पूर्व गांधी जी के बुनियादी शिक्षा चिंतन पर प्रो. कृष्ण कुमार का व्याख्यान 'विमर्श' में प्रकाशित हो चुका है । प्रस्तुत व्याख्यान में शिक्षा का तत्कालीन परिप्रेक्ष्य मौजूद है तो 'नयी तालीम' की वर्तमान से जुडती और प्रासंगिक दिखती धाराएं हैं । व्याख्यान के बीच में आये विषयान्तर नयी तालीम को दूसरे अर्थ संदर्भों से जोड़ते हैं । व्याख्यान संपादित है किन्तु इसके मूल प्रवाह को बनाये रखने की कोशिश की गई है ।

एक बात मैं बताऊं कि शिक्षा से मेरा सीधा ताल्लुक नही है । मैं समाजशास्त्र का छात्र रहा। शिक्षा में मैं कैसे आया, इसकी मैं पहले थोड़ी भूमिका बताऊंगा । दक्षिण-पूर्व एशिया का एक प्रतिनिधि मण्डल जामिया मिलिया इस्मालिया (नयी दिल्ली) आया । प्रतिनिधि मंडल के लोग चाहते थे कि जामिया में कहीं डॉ. डाकिर हुसैन के पांवों के निशान हों तो वह उन्हें देखें । पांवों के निशान यानी जाकिर साहब का शिक्षा-प्रयोग, कोई तजुर्बा यदि आज भी वहां चल रहा हो । जब उन्होंने यह कहा तो मैंने वगैर सोचे हां कर दी ।

जब चालीस पचास लोगों का यह समूह जामिया में आ गया तो मैं परेशान हुआ कि क्या दिखाऊं इन लोगों को ? जामिया का स्कूल तो आम सरकारी स्कूलों जैसा ही स्कूल था, कोई प्रयोग या नवाचार तो वहां था नहीं । तो मैंने सोचा कि ऐसा करता हूं, जिस तरह पर्यटक पुराना किला दिखाते हैं ऐसे ही मैं जामिया को दिखाऊं - 'शिक्षा का एक खंड़हर' ।

1960 की मेरी कुछ यादें थीं । एक चिडियाघर वहां हुआ करता था, उसकी जाली मौजूद थी । उसकी चिडियाँ और हरिण गायब हो गये थे । उस समय बच्चे ही चिडियाघर की देखभाल किया करते थे । बागवानी के लिए जमीन का एक टुकडा था जहां बहुत कुछ हुआ करता था लेकिन अब यह बंजर पड़ा था और भवन निर्माता इसे देख कर सोचा करते थे कि किस तरह इसे हड़प कर बहुमंजिली इमारत खड़ी कर दें । प्रतिनिधि मंडल ने आते ही पूछा कि डॉ. जाकिर हुसैन की कब्र कहां पर है ? मै उन्हें वहां ले गया। वहां मैं पुरानी बातों में गया, मुझे लगा कि जिस तरह से ध्वनि और प्रकाश के कार्यक्रमों से खंडहरों को पुनर्जीवित किया जाता है कुछ वैसा किया जाये। शिक्षा के खंडहरों को स्मृतियों के सहारे पुनर्जीवित करना ।

जामिया का स्कूल तो आम सरकारी स्कूलों जैसा ही स्कूल था, कोई प्रयोग या नवाचार तो वहां था नहीं । तो मैंने सोचा कि ऐसा करता हूं, जिस तरह पर्यटक पुराना किला दिखाते हैं ऐसे ही मैं जामिया को दिखाऊं – शिक्षा का एक खंड़हर ।

जामिया में डॉ. जाकिर हुसैन का संग्रहालय है। प्रतिनिधि मंडल ने संग्रहालय देखा । उन्हें बताया गया कि ये उनके कपड़े हैं, ये वो तोहफा है जिसे वे नागालैंड से लाये, इसे विदेश से । वहां जाकिर साहब की व्यक्तिगत चीजों का प्रदर्शन था । प्रतिनिधियों ने पूछा - लेकिन उनकी शिक्षा से संबंधित चीजें कहां हैं ?

उन्हें कैसे बताया जाता कि जब वे डॉ. जाकिर हुसैन थे तब उनके पास व्यक्तिगत कुछ नहीं था । और उसके बाद जब वे उप-कुलपति बने, राज्यपाल, उप राष्ट्रपति और राष्ट्रपति बने तो उनके पास सब कुछ आ गया पर शिक्षा हाथ से चली गयी । 1948 में गांधीजी शहीद हुए और अजीब सी बात ये है कि उसी वक्त बुनियादी शिक्षा को भी शहीद किया गया । जिस 'नयी तालीम' को उन्होंने 'जीवन के जरिये और जीवन के बारे में शिक्षा' के रूप में परिभाषित किया था वह तो 1948 के बाद ही कमोबेश खत्म हो गयी, रिपोर्ट भले कुछ भी हो । जमीनी हकीकत ये है कि 1948 में गांधीजी शहीद हुए, डॉ. जाकिर हुसैन को अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय का उपकुलपति बना कर भेज दिया और बुनियादी शिक्षा भी फिर वैसी नहीं रही । हालांकि जामिया में सातवें दशक तक चली बुनियादी शिक्षा की कुछ छाप मेरी याददाश्त में थी ।

1948 में गांधीजी शहीद हुए और अजीब सी बात ये है कि उसी वक्त बुनियादी शिक्षा को भी शहीद किया गया । जिस 'नयी तालीम' को उन्होंने 'जीवन के जरिये और जीवन के बारे में शिक्षा' के रूप में परिभाषित किया था वह तो 1948 के बाद ही कमोबेश खत्म हो गयी, रिपोर्ट भले कुछ भी हो । जमीनी हकीकत ये है कि 1948 में गांधीजी शहीद हुए, डॉ. जाकिर हुसैन को अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय का उपकुलपति बना कर भेज दिया और बुनियादी शिक्षा भी फिर वैसी नहीं रही ।

गांधी ने मादरे-जुबान (मातृभाषा) की बात की थी । मोहम्मद अली ने गांधी जी से पूछा कि यदि मादरे-जुबान में तालीम न हो तो इसका क्या मतलब होता है ? गांधी जी ने जबाव दिया कि इसका मतलब कुछ ऐसा होता है जैसे रेल पटरी से उतर जाये और उसे रेत में घसीटा जाये। और बोले, मादरे-जुबान में तालीम हो तो ऐसा है जैसे घोड़ा गाडी चिकनी सड़क पर चली जा रही है जहां कोई अवरोध नहीं है, वह सरपट दौड़ रही है । शिक्षा अगर मातृभाषा में हो तो आदमी ख्यालात और दूसरी बातें जल्दी सीख लेता है; वे दूसरी जुबान में सीखना उसके लिए मुश्किल होगा।

मैं यहां हिन्दुस्तानी बोल रहा हूं । जिसका उर्दू की तरफ झुकाव है । मेरी मादरे-जुबान उर्दू है पर मेरी शिक्षा उसमें नहीं हुई । मेरी स्कूलिंग हिन्दी में हुई, एक और जुबान अंग्रेजी से मुझे जोड़ने की कोशिश की गयी । लेकिन अब न मुझे हिन्दी ठीक से आती है और न उर्दू और न अंग्रेजी। मैंने इन भाषाओं को सीखा तो शायद कुछ हाथ आया और कुछ नहीं आया । तो जामिया मिलिया इस्लामिया में मातृभाषा में शिक्षा देना बुनियादी तालीम का एक प्रेरणास्रोत था ।

जैसा कि मैंने बताया कि मैं तो समाजशास्त्र का विद्यार्थी था, शिक्षा की तरफ कैसे आया, इसका किस्सा बताता हूं । मेरी खुद की तालीम तो वैसी ही हुई जैसे यूनिवर्सिटी में आम आदमी की होती है। हमने अपनी तालीम के बारें में सोचना शुरू किया तो ये उस वक्त सोचा जब मैं पी.एच.डी. कर रहा था। पी.एच.डी. के लिए मेरा विषय 'खदान मजदूरों का सामजिक सांस्कृतिक अध्ययन' था । इसमें भी अभी स्कूल तक पहुंचना मुश्किल था। स्कूल शोध योजना या शोध की अवधारणात्मक रूपरेखा का हिस्सा नहीं था ।

मेरे शोध की पद्धति का हिस्सा ये था कि खदान मजदूरों के बीच चल रही सामाजिक विकास की किसी योजना के जरिये अगर मैं वहां लोगों से दोस्ती कर लूं तो सूचनाएं इकट्ठा करना मेरे लिए आसान हो जायेगा। मैंने इस तरीके का इस्तेमाल करके जब उनके बीच काम करना शुरू किया तो मुझे एक बच्चा मिला । मैं आठवीं तक पढ़े बच्चों को तकनीकी कौशल हासिल करने के लिए प्रेरित करना चाहता था । लेकिन इस बच्चे ने पांचवी कक्षा के बाद स्कूल जाना छोड़ दिया था । मैंने बच्चे से पूछा कि तुम आठवीं तक क्यों नहीं पढ़े ? बच्चे ने कहा कि इसलिए नहीं पढ़ा क्योंकि पढ़ने में मेरी रुचि नहीं है। मैंने कहा कि रुचि न होने का क्या मतलब है ? बच्चे ने कहा कि मेरे यहां दिमाग नहीं है । मैंने सोचा कि अब मैं बच्चे के तर्क को आगे बढ़ाता हूँ । मैने पूछा, यहां दिमाग न होने का क्या मतलब है ? उसने कहा कि यहां दिमाग नहीं है, भूसा भरा हुआ है । मैंने

पूछा-ये तुम्हें किसने बताया ? उसने कहा कि मेरे शिक्षक ने बताया । मैंने उससे पूछा कि क्या तुम मुझे अपने शिक्षक से मिलवाओगे ? उसने कहा, हां, मिलवाऊंगा, आप अगले हफ्ते हमारे साथ चलिये । उसे अगले चार-पांच रोज तक काम था ।

उस वक्त मुझे ख्याल हुआ कि इसने स्कूल से तो बहुत कुछ सीखा । स्कूल से ज्ञान सीखा जाता है तो ज्ञान तो इसे भी हासिल हुआ। ज्ञान ये कि इसके सिर में दिमाग की जगह भूसा भरा हुआ है । यह जानकारी भी तो ज्ञान का हिस्सा है क्योंकि यह ज्ञान इसके निर्णय और व्यवहार को संचालित कर रहा है। अर्थात आज ये जो कर रहा है उस पर स्कूल में सीखे इस ज्ञान का असर है । इस का मतलब ये हुआ कि इसका शिक्षक लायक है, वह जो कुछ सिखाता है, बच्चे को समझ आता है। सफल शिक्षक तो वही हुआ जो बच्चे को अपनी बात समझा सके । तो मैंने सोचा कि ऐसे शिक्षक से मैं मिलना चहूंगा ।

अगले हफ्ते मैं उस बच्चे के साथ उसके स्कूल गया । उसने अपने शिक्षक से मेरा परिचय करवाया कि ये यूनिवर्सिटी में शिक्षक हैं, यहां अध्ययन कर रहे हैं और आपसे मिलना चाहते हैं। शिक्षक को मुझसे मिलकर खुशी हुई । उसने कहा, आइये, बैठिये ! मैंने कहा अभी तो आप क्लास ले रहे हैं, आप स्कूल के बाद का कोई समय मुझे बता दीजिए । शिक्षक ने कहा कि नहीं, मुझसे अगर आपको मिलना है तो इसी समय मिलिए, 9 बजे से 1 बजे तक । स्कूल के बाद तो मैं बहुत व्यस्त रहता हूं । उसके बाद ये हुआ कि उसने मुझे अच्छी तरह बिठाया और बातचीत शुरु हो गयी।

जिस वक्त मैं शिक्षक से मिला, वह कुछ खत लिख रहा था । मैंने पूछा, आप क्या करते हैं? उसने बताया कि उसका ईंटें सप्लाई करने का कुछ काम है । उसने आगे बताया कि वह और भी कुछ काम करता है गुजारे के लिए । मैंने उससे पूछा कि आप मुझे इस बारे में बताइये जो आप यहां कर रहे हैं । उसने कहा, छोड़िये इसमें कुछ नहीं है । मैंने आग्रह किया, नहीं फिर भी बताइये। उसने कहा, देखिए ये तो एक नौकरी है ही हमारे पास, मगर इससे हमारा गुजारा नहीं हो सकता। इसके बाद उसने अपने घर और गांव की बातें बतानी शुरू कीं । धीरे-धीरे मुझे लगा कि स्कूल तो उसके लिए कोई बहुत प्रासंगिक चीज है ही नहीं ।

उसके बाद उसका और उसके जैसे बारह और शिक्षकों के व्यवहार का अवलोकन करने और उनसे बातचीत के बाद मुझे लगा कि उन्हें अपने छात्रों के बारें में ज्ञान था । यह ज्ञान वैज्ञानिक था या नहीं, इस बहस में मैं नही जाना चाहता । शिक्षकों को यह मालूम था कि ये बच्चे किस समाज से हैं, उनकी कौन सी सामाजिक समस्याएं हैं, जिनसे वे रोजाना जूझते हैं । उस शिक्षक ने मुझे बताया कि इन बच्चों के मां-बाप शराब पीते हैं । उन्होंने उधार पैसा लिया हुआ है और वे कर्ज में जकड़े हैं । ये लोग प्रवासी मजदूर हैं, एक जगह ठहरते नहीं हैं । जहां काम मिला, वहां काम किया, उसके बाद कहीं दूसरी जगह चले गये । कहीं तीन महीने रहे, कहीं छह महीने तो कहीं एक साल । मगर एक साल टिकना तो कम ही हो पाता है। फिर इनके बच्चों को कौन पढ़ाये ?

शिक्षकों को यह मालूम था कि ये बच्चे किस समाज से हैं, उनकी कौन सी सामाजिक समस्याएं हैं, जिनसे वे रोजाना जूझते हैं। उस शिक्षक ने मुझे बताया कि इन बच्चों के मां–बाप शराब पीते हैं । उन्होंने उधार पैसा लिया हुआ है और वे कर्ज में जकड़े हैं । ये लोग प्रवासी मजदूर हैं, एक जगह ठहरते नहीं हैं । जहां काम मिला, वहां काम किया, उसके बाद कहीं दूसरी जगह चले गये । कहीं तीन महीने रहे कहीं छह महीने तो कहीं एक साल । मगर एक साल टिकना तो कम ही हो पाता है। फिर इनके बच्चों को कौन पढ़ाये ?

मैंने उनको कहा कि इसका मतलब तो आपका जो तरीका है पढ़ाने का, वह शायद बदलना पड़े । आपकी पाठ्यपुस्तक बदल जायेगी, बात करने का तरीका बदल जायेगा, चीजों का संबंध बदल सकते हैं । शिक्षक ने कहा, नहीं, ये तो सब पता नहीं आप कैसी बातें कर रहे हैं और ये मेरी समझ में भी नहीं आ रही हैं । फिर मैं ने उनसे पूछा कि क्या यहां के शिक्षक बच्चों के घर जाते हैं । उन्होंने कहा, नहीं, और इसका कोई फायदा भी नहीं है । एक दफा किसी शिक्षक ने ऐसी कोशिश की थी तो उसका किस्सा बारह तेरह साल तक स्कूल में चलता रहा । किस्से का सार यह था कि बच्चों के घर जाने का कोई फायदा नहीं हुआ। लोगों ने उससे वादे किये कि स्कूल आयेंगे और मिलकर बातचीत करेंगे, पर कोई नहीं आया । उस एक अनुभव के बाद पिछले बारह वर्ष से

फिर किसी शिक्षक ने ऐसी कोशिश नहीं की ।

इन बच्चों के समाज की एक खास तरह की तस्वीर शिक्षकों के दिमाग में थी । उनका कहना था कि इन लोगों के पुरखे भी मजदूर थे । ये लोग पीढ़ियों से मजदूरी करते आ रहे हैं । चूंकि ये लोग हाथ का काम करते आये हैं इसलिए दिमाग का काम ये वैसे भी नहीं कर सकते । इस बात का आपको पता ही नहीं है । आप तो जिस जगह पढ़ाते हैं, वहां तो वे बच्चे आते हैं जिनकी स्कूली पढ़ाई हो चुकी होती है। वे बी.ए., एम.ए के छात्र होते हैं । लेकिन ऐसे बच्चों से बातचीत का आपको कोई अनुभव ही नहीं है, इन लोगों के बारे में आपको कोई ज्ञान नहीं है जिनके यहां पढ़ने की कोई परंपरा ही नहीं है ।

इन बच्चों के समाज की एक खास तरह की तस्वीर शिक्षकों के दिमाग में थी । उनका कहना था कि इन लोगों के पुरखे भी मजदूर थे । ये लोग पीढ़ियों से मजदूरी करते आ रहे हैं । चूंकि ये लोग हाथ का काम करते आये हैं इसलिए दिमाग का काम ये वैसे भी नहीं कर सकते ।

इस बात का आपको पता ही नहीं है । आप तो जिस जगह पढ़ाते हैं, वहां तो वे बच्चे आते हैं जिनकी स्कूली पढ़ाई हो चुकी होती है। वे बी.ए., एम.ए के छात्र होते हैं । लेकिन ऐसे बच्चों से बातचीत का आपको कोई अनुभव ही नहीं है, इन लोगों के बारे में आपको कोई ज्ञान नहीं है जिनके यहां पढ़ने की कोई परंपरा ही नहीं है ।

इस बात पर मैं चुप हो गया क्योंकि ये बात सही थी । वास्तव में मेरा निजी अनुभव इस तरह का नहीं था कि मैं ने ऐसे बच्चों को पढ़ाया हो और उनकी मुश्किलों को जाना हो । सो मैंने शिक्षकों की इस बात को गंभीरता से लिया ।

मैंने शिक्षकों से पूछा, क्या ऐसा मुमकिन है कि मैं कक्षा में बैठ जाऊं और जो पढ़ाया जाता है उसको बैठकर देखूं ? तो पहले तो वे लोग सशंकित हुए कि मैं पता नहीं इंस्पेक्टर या कौन हूं। लेकिन जब उनसे ठीक तरह जान-पहचान हो गई और उन्हें लगा कि मेरे शोध से उन्हें डरने की जरूरत नहीं है। यह तो आम पी.एच.डी. करने वालों जैसा ही शख्स है, तो उन्होनें मुझे कक्षा में बैठने की इजाजत दे दी ।

फिर मैंने तीन कक्षाओं की पढ़ाई का अवलोकन किया । हिन्दी का शिक्षक अच्छा शिक्षक था और बहुत ही जोश के साथ पढ़ाता था । मुझे लगा कि यहां शायद कोई प्रेरक प्रसंग मिल जायेगा। शिक्षक पाठ्यपुस्तक से कहानियां बच्चों को सुनाता था । मुझे लगा कि कहानियां तो कुछ और ही कथा कहती हैं ।

अब मैं एक कहानी के बारे में आपको बताता हूं । ये कुछ कहानियां थीं जिन्हें शिक्षक बच्चों को रटाया करता था । लेकिन ये कहानियां बच्चों के लिए बड़ी प्रासंगिक थीं और बच्चे इनमें दिलचस्पी लेते थे । शुरू में मेरा ख्याल था कि बच्चे कहानी को ठीक से समझते नहीं हैं इसलिए ड्रॉप आउट हो जाते हैं । शिक्षक अपने तौर पर भले ही उत्साही है मगर बच्चे बात समझ रहे हैं या नहीं, इसकी इन्हें परवाह नहीं होगी । बाद में मुझे लगा कि इन कहानियों का बच्चों के सामाजिक संदर्भ से एक खास किस्म का तालमेल था। यह तालमेल अजीब-सा, असंगत भी था ।

तो इनमें एक कहानी शहद की मक्खी के बारे में थी । कहानी में छत्ते का वर्णन था कि इसमें एक रानी होती है, मजदूर होते हैं । मजूदर कौन हैं, जो शहद लाते हैं, जो पंख फड़फड़ाकर छत्ते के तापमान को कम रखते हैं । मजदूरों के काम का पूरा ब्यौरा इसमें दिया हुआ था । रानी कौन है, जो काम नहीं करती सिर्फ मजे करती है । ये कहानी है । ऐसी ही एक और कहानी सुनने को मिली। यह कहानी मकराना की मार्बल खान के बारे में थी । कहानी में एक बच्चा है जिसके दादा खान में काम करते हैं । ये एक मूर्ति बनाते हैं और एक वक्त में ये मूर्ति बेच दी जाती है। ये बच्चा काम में अपने दादा की मदद करता है । दादा खुश होकर ईद के रोज बच्चे को एक तोहफा देते हैं । अब ये कहानी सुनने में तो बहुत अच्छी है लेकिन आप इन्हें उस संदर्भ में रखकर देखिए जहां बच्चे अपने मां-बाप के साथ ट्रक में पत्थरों की ढुलाई करवाते हैं । यहां ये सब रोजमर्रा की चीजें हैं । वहां मजदूरी दैनिक आधार या समय के आधार पर तय नहीं थी बल्कि वहां 'पीस वेज' हुआ करता था। अगर एक ट्रक पत्थरों से भर दिया तो उसके नाप के आधार पर पैसा मिला करता था। इसमें बच्चे अपने मजूदर मां-बाप की मदद करते थे । विस्फोट के बाद जब पत्थर इधर-उधर बिखर

जाते थे तो ये लोग इन्हें इकट्ठा करते थे । वहां मजूदरों के लिए पीने के पानी की कोई व्यवस्था नहीं थी, बच्चे दूर नल से पानी पहुंचाया करते थे । मां-बाप को दोपहर का खाना पहुंचाया करते थे ।

इस संदर्भ में हिन्दी की पाठ्यपुस्तक में शामिल मकराना खान वाली कहानी जिसमें पोते ने दादा की काम में मदद की, एक समझ में आने वाली कहानी थी । मगर एक मायने में यह इस बात को औचित्य प्रदान कर रही थी कि अगर बच्चे स्कूल न जायें और अपने मां-बाप की मदद करें तो भी कोई बात नहीं थी। ऐसी ही एक कुम्हार के बच्चे की कहानी थी जो पिता की मदद करता है।

इन कहानियों को देखकर अंदाजा हुआ जैसे सामाजिक तौर पर एक पिरामिड है जिसमें ऊपर एक छोटा सा शीर्ष है और सबसे नीचे इसका वृहद् आधार है । निचले आधार में वे लोग हैं जो हाथ से काम करते हैं । ऊपर का छोटा - सा हिस्सा दिमाग से काम करने वाले लोगों का है । ये लोग सुखी हैं, इनके पास सब कुछ मौजूद है । चतुराई से आपकी हालत बदल जाये, इसकी बहुत सारी कहानियां हिन्दी की इन पाठ्यपुस्तकों में मौजूद थीं ।

सबसे दिलचस्प कहानी मुझे जो लगी वह एक चिड़ियाघर के बारे में थी । चिडियाघर की सफाई, जीव-जन्तुओं के भोजन में विटामिन और डाक्टरों द्वारा उनकी देखभाल का इस पाठ में विस्तार से वर्णन था । यह वर्णन इतना खूबसूरत था कि मन होता था, हम भी जानवर हो जायें। यह कहानी जिन बच्चों को पढ़ायी जा रही थी उनके मां-बाप की हालत मुझे पता थी । जब मैं उनके यहां गया और कहा कि मैं यहां एक अध्ययन के सिलसिले में आया हूं और आपके साथ कुछ समय मिल बैठना चाहता हूं तो उन्होंने पता नही मुझे क्या समझा । उन्होंने मुझे अपने कुएं में झांककर उसमें जमी हरी काई दिखाई और कहा, देखो ये बिल्कुल खराब हो गया है । उन्होने शिकायत की कि मलेरिया इंस्पेक्टर उनके यहां एक अर्से से नहीं आया । बिजली के फैले तारों की ओर इशारा कर उन्होंने बताया कि इनमें बिजली नहीं आती । जबकि मैं जानना चाहता था, आप कौन हैं, यहां कब आये और ऐसे सवालों की एक प्रश्नावली मेरे पास थी । लेकिन उन्होंने एक दूसरी ही तस्वीर मेरे सामने पेश की ।

अब ऐसे लोगों के संदर्भ में उस 'चिड़ियाघर' के वर्णन को आप देखिए जहां जीव-जन्तुओं को सारी सुविधाएं मुहैया हैं । एक बड़ी खाई पाठ्यपुस्तक और बाहरी समाज के बीच दिखायी देती है। लेकिन एक तरह से उनकी दशा को औचित्य भी मिल रहा है कि जो कुछ यहां हो रहा है वैसा ही वहां भी है । इसमें कोई प्रेरणा नहीं मिलती। ऐसे में यदि कोई बच्चा स्कूल छोड़ देता है तो उसे लगता है कि ये ठीक ही है, पढ़ने में मेरी रुचि नहीं थी, दिमाग में भूसा भरा था । ऐसे पाठों ने इसमें मदद ही की कि बच्चे स्कूल छोड़ जायें और खान-मजदूरी करें । वे शायद पैदा ही इसलिए हुए थे या कहिए यही कुदरत का निजाम था । कुदरत का नियम जैसा मधुमक्खियों के छत्ते में हो रहा था और जैसा कि अन्य दूसरी कहानियों में था ।

इन कहानियों से तो ऐसा लगता है कि जैसे और कुछ तो इस पाठ्यक्रम में हो ही नहीं सकता था । पर मुझे लगा कि ऐसी बात नहीं थी । मैंने तकरीबन तीन साल इस इलाके में काम किया। मुझे सिर्फ सूचनाएं जुटानी थी लेकिन एक और सच्चाई भी मुझे वहां दिखाई दी । मुझे लगा कि इन लोगों के जो अनुभव और स्मृतियां थीं, लोकगाथाएं थीं, उनको अगर बटोरा जाये और ठीक से लिखकर इन्हें वापस पढ़ने को दिया जाये तो शिक्षा में एक महत्वपूर्ण काम हो सकता था । इनकी लोक स्मृतियों में इतनी शक्ति थी कि इनसे ये खुद सीख जाते । बाहर से किसी शिक्षक की तो इन्हें जरूरत ही नहीं थी । इसकी एक-दो मिसाले मैं आपको देता हूं ।

इन कहानियों से तो ऐसा लगता है कि जैसे और कुछ तो इस पाठ्यक्रम में हो ही नहीं सकता था । पर मुझे लगा कि ऐसी बात नहीं थी। मैंने तकरीबन तीन साल इस इलाके में काम किया । मुझे सिर्फ सूचनाएं जुटानी थी लेकिन एक और सच्चाई भी मुझे वहां दिखाई दी । मुझे लगा कि इन लोगों के जो अनुभव और स्मृ तियां थीं, लोकगाथाएं थीं, उनको अगर बटोरा जाये और ठीक से लिखकर इन्हें वापस पढ़ने को दिया जाये तो शिक्षा में एक महत्वपूर्ण काम हो सकता था । इनकी लोक स्मृतियों में इतनी शक्ति थी कि इनसे ये खुद सीख जाते । बाहर से किसी शिक्षक की तो इन्हें जरूरत ही नहीं थी । इसकी एक–दो मिसालें मैं आपको देता हूं।

खदानों में गुरुवार को छुट्टी रहा करती थी। यह जबरिया छुट्टी थी, इस दिन की मजदूरी खान मजदूरों को नहीं दी जाती थी। सरकार की तरफ से ऐसे निर्देश थे कि सप्ताह में एक दिन छुट्टी रहनी चाहिए । तो उस दिन ये लोग आपस में मिलकर बैठते थे और कहानियां सुनाया करते थे। किस्सागोई का यह अंदाज इतना जीवंत और निराला था कि इसमें नाटकीयता और सेमिनार के तत्त्व आपस में घुले-मिले थे ।

सवाल इस तरह से पूछे जाते थे – हम गरीब क्यों हैं ? हम इतने ज्यादा कर्जे से क्यों दबे हैं ? अब ये तो सीधे–सीधे सवाल हैं पर इनके जो जवाब होते थे, वे किस्से कहानियों में होते थे। इनमें से एक किस्सा सुनाऊं । मैं सोचता हूं कि अगर ये पाठ्यपुस्तक में होता तो इसका जबर्दस्त असर होता ।

सवाल इस तरह से पूछे जाते थे - हम गरीब क्यों हैं ? हम इतने ज्यादा कर्जे से क्यों दबे हैं ? अब ये तो सीधे-सीधे सवाल हैं पर इनके जो जवाब होते थे, वे किस्से कहानियों में होते थे। इनमें से एक किस्सा सुनाऊं । मैं सोचता हूं कि अगर ये पाठ्यपुस्तक में होता तो इसका जबर्दस्त असर होता । बंधुआ मजदूरों के बारे में आपने सुना होगा। इन खदानों में भी बंधुआ मजदूर थे। बंधुआ मजूदर का मतलब था, कोई मजदूर अपने गांव के महाजन का कर्जदार है लेकिन उस कर्जे को वह चुका नहीं पाया । दिल्ली का एक ठेकेदार गांव में गया और मजदूर से पूछा कि क्या तुम मेरे साथ पत्थर तोड़ने का काम करने चलना चाहोगे । मजदूर ने कहा कि मैं नहीं जा पाऊंगा, मैं तो महाजन के कर्ज से जकड़ा हुआ हूं । ठेकेदार ने कहा कि महाजन का कर्ज तो हम अभी उतारते हैं, तब तो चलोगे । मजदूर राजी हो गया । इस तरह ये नये महाजन के कर्जदार हो जाते और ये कर्ज वे शायद ही चुका पाते । अनेक लोगों ने इनके सर्वेक्षण में ये कर्ज पांच से पन्द्रह हजार के बीच बताया है । लेकिन मजदूरी में से कर्ज की कटौती का हिसाब ऐसे रखा जाता कि कर्ज खत्म ही नहीं हो पाता । कई बार मजदूर हिसाब रखने वाले मुंशी और ठेकेदार से हिसाब किताब को लेकर झगडते ।

ये कहानियां कभी पाठ्यपुस्तकों का, शिक्षा का हिस्सा नहीं बनीं लेकिन अगर बन जातीं तो बहुत प्रभावी होतीं । वे लोग किस तरह से अपनी स्थिति को परिभाषित करते हैं, कैसे खुद को समाज से जोड़ते हैं । उनकी पूरी सोच और स्मृतियां इन कहानियों में दर्ज थीं । अगर हम इतिहास में न जायें तो ये जो तस्वीर है, इसमें बहुत से लोग ऐसी दशाओं के पिंजरे में टंगे हैं जिनसे निकलना वास्तव में मुमकिन नहीं लगता । लेकिन इस इतिहास और अनुभव से एक दिशा मिलती है।

किस्से कहानी सुनाने वालों में एक सवाल ये था; ऐसी दशा में, जिसमें इतनी गरीबी और सिर पर इतना कर्ज है, क्या इसके छुटकारा इस तरह मिल सकता है कि पास वाले कुएं में छलांग लगा दें ? इस प्रसंग पर एक दूसरे खदान मजदूर ने कहानी सुनायी । कहानी यूं थी। एक खदान मजदूर था जो कर्जे में डूबा हुआ था। गरीबी से निजात पाने के लिए उसने कुएं में छलांग लगा दी । अंदर कुएं में एक मेंढक तैर रहा था । मेंढक ने पूछा तू कौन है ? तेरी जात क्या है ? उसने जवाब दिया कि मैं तो शूद्र हूं । तो मेंढक ने कहा, बड़ी देर से तेरा इंतजार था । देख यहां पर काई बहुत जम गयी है, इसको जरा छंटा दे । कहानी के बाद सब लोगों ने जबर्दस्त ठहाका लगाया। यह विडंबना का कथा चित्रण था। एक तरह से उन्होंने उसी परिस्थिति का मजाक उड़ाया जिसमें वे खुद जकड़े हुए थे ।

फिर एक कहानी और सुनायी गयी कि नहीं, यदि तुम कुँए में डूबना भी चाहो तो नहीं डूब सकते क्योंकि तुम्हारा यहां से निकलना संभव ही नहीं है । ये तो असंभव वाली कहानियां थी, एक संभव वाली भी सुनायी गयी कि कैसे मुमकिन है। कहने का मतलब ये कि ये कहानियां कभी पाठ्यपुस्तकों का, शिक्षा का हिस्सा नहीं बनीं लेकिन अगर बन जाती तो बहुत प्रभावी होतीं । वे लोग किस तरह से अपनी स्थिति को परिभाषित करते हैं, कैसे खुद को समाज से जोड़ते हैं । उनकी पूरी सोच और स्मृतियां इन कहानियों में दर्ज थीं । अगर हम इतिहास में न जायें तो ये जो तस्वीर है, इसमें बहुत से लोग ऐसी दशाओं के पिंजरे में टंगे हैं जिनसे निकलना वास्तव में मुमकिन नहीं लगता । लेकिन इस इतिहास और अनुभव से एक दिशा मिलती है।

इस संदर्भ में, एक और मिसाल मैं आपको देता हूं । मंडल कमीशन रिपोर्ट का विवाद छाया था, उस समय दिल्ली में काफी हंगामा मचा था । यहां तक कि लोगों ने खुद को जला लिया था। तब अनेक समाजशास्त्री भी कहते थे कि ये जो पिछड़ी जाति के लोग हैं ये वहीं रहें तो अच्छा है, इसलिए कि ये शिक्षा को प्रदूषित न करें । बड़े बड़े अखबारों के संपादकीय लेखों में सदियों पुरानी

घृणा किस तरह निकल कर आयी । जब हम यह बात करते हैं कि शिक्षा को किताब के चक्र से निकालकर वास्तविक जिंदगी से जोड़ें और इसे प्रासंगिक बनायें, शिक्षा को ऐसा बना दें कि बच्चा सीखकर खुद कमाने लायक हो जाये । लेकिन मंडल आयोग वाले दिनों में ऐसा लगता था कि जैसे लोगों ने यह बात अपने दिमाग से निकाल दी थी । यह वैसी ही परिस्थिति थी जैसी इस सदी के शुरू में थी, जब कहा गया था कि ये शिक्षा अगर किसान को न भी दी जाये तो कुछ फर्क नहीं पड़ेगा ।

1908 में गांधी जी 'हिन्द स्वराज्य' में लिखते हैं कि ये अक्षर अगर तुमने किसान को दे दिये तो इससे किसान की जिंदगी में क्या फर्क पड़ेगा, उससे नुकसान तो होगा पर लाभ क्या होगा? नुकसान गिनाये गये हैं, कि उसे अपनी झोंपड़ी बुरी लगने लगेगी । वो काम जो उसके पुरखे करते आये हैं, उससे वह बेगाना हो जायेगा, शहर में जाना चाहेगा । लाभ कुछ भी नहीं होगा । फिर वे बताते हैं कि क्या चीजें हैं जिन्हें वह पहले से जानता है । वह ये जानता है कि खेती कैसे करे। वह जिन्दगी की जरूरतों के बारे में जानता है, जिन्दगी के नियमों का पालन करता है। तब इस अक्षर को पढ़कर उसे क्या मिलेगा ?

1908 में गांधी जी 'हिन्द स्वराज्य' में लिखते हैं कि ये अक्षर अगर तुमने किसान को दे दिये तो इससे किसान की जिंदगी में क्या फर्क पड़ेगा, उससे नुकसान तो होगा पर लाभ क्या होगा ? नुकसान गिनाये गये हैं, कि उसे अपनी झोंपड़ी बुरी लगने लगेगी । वो काम जो उसके पुरखे करते आये हैं, उससे वह बेगाना हो जायेगा, शहर में जाना चाहेगा । लाभ कुछ भी नहीं होगा । फिर वे बताते हैं कि क्या चीजें हैं जिन्हें वह पहले से जानता है । वह ये जानता है कि खेती कैसे करे। वह जिन्दगी की जरूरतों के बारे में जानता है, जिन्दगी के नियमों का पालन करता है। तब इस अक्षर को पढ़कर उसे क्या मिलेगा ?

ये तो 'हिन्द स्वराज' में गांधी जी की सोच है । लेकिन गांधी जी के समय ऐसे दूसरे लोग भी थे जो यही सोचते थे कि हां इन्हें अक्षर से क्या मिलेगा और ये तो अक्षर को समझ भी नहीं सकते क्योंकि इनकी परिस्थित ऐसी ही रही है। ऐसा एक वर्ग था जो उन्हें शिक्षित करने का विरोधी था। 1990 में मंडल आयोग के विवाद के समय फिर यही सोच सामने आयी । दिल्ली में मोरिस नगर चौक जहां पर दिल्ली विश्वविद्यालय स्थित है, लड़कियां प्ले कार्ड लिये थीं 'हमें ऐसा पति नहीं चाहिये जिसके पास रोजगार न हो ।' वे रोजगार का सवाल उठा रही थीं । अच्छा सवाल है, रोजगार तो सभी को मिलना चाहिए । लेकिन नहीं, उनके पति को रोजगार मिलना चाहिए । उनको लगा कि रोजगार का ये जो छोटा सा केक है, इसे ये लोग ले जायेंगे । रोजगार तो उनके पतियों को मिलना चाहिये । फिर एक प्ले कार्ड इस तरह का था कि जब हम बीमार पड़ें तो हमारा आपरेशन ऐसा डॉक्टर नहीं करे जो आरक्षण से आया हो। इसका विश्लेषण करें, उस समय इस पर बहुत बहसें हुआ करती थीं । जो मेरिट धारक डॉक्टर इंजीनियर हैं, वे तो पहले ही इंग्लैंड और अमेरिका चले गये हैं । आज आप राष्ट्रीय आयुर्विज्ञान संस्थान चले जाइये, आई. आई. टी. में चले जाइये, वहां कोई मेरिट धारी नहीं मिलेगा, उनकी तो पहले ही ब्रोकिंग हो जाती है, वे बाहर चले जाते हैं ।

उच्च शिक्षा और तकनीकी शिक्षा के जो भी संस्थान हैं, वहां भी कक्षा में विद्यार्थियों की अनुपस्थिति बढ़ती जा रही है । वे कहते हैं कि हमें तो बस डिग्री चाहिए, बाकी तो हमें जहां नौकरी मिलेगी, वहां हम सीख जायेंगे । तो फिर इन आरक्षण वालों से ही क्यों शिकायत है ? मुझे लगा कि ये जो जाति से जुडे कुछ वर्ग हैं, जो शिक्षा से वंचित रहे हैं, वे शिक्षा में आयें या न आयें, यही पुराना सवाल है । जामिया प्रसंग पर मैं थोड़ी देर बाद आऊंगा, उससे पहले मंडल आयोग रिपोर्ट का एक प्रसंग ।

मंडल आयोग रिपोर्ट में जिंदगी की दौड़ को दो चरित्रों के जरिये दिखाया गया है । ये दो चरित्र है मोहन और लल्लू । ये नाम जान कर रखे गये हैं क्योंकि इन नामों से ही ये छवि उभर आती है कि मोहन कौन है और लल्लू कौन है ? यह दौड़ 100 मीटर की है जिसमें मोहन 90 मीटर पर खडा है और उसे सिर्फ 10 मीटर दौड़ना है । जबकि लल्लू 100 मीटर से भी पीछे खड़ा है, तकरीबन 110 मीटर दौड़ना है । जो सामाजिक बाधाएं हैं उनका इस वृतान्त में बडा रोचक वर्णन है । लल्लू की एक छोटे से गांव में शिक्षा होती है जहां उसका स्कूल गांव से करीब 5 किलोमीटर दूर था । गांव से स्कूल तक के रास्ते में लल्लू की जो मुश्किलें हैं उन्हें खदान मजदूरों के बच्चों के अनुभवों

से जाना जा सकता है ।

एक बच्चे ने मुझे बताया, एक दफा गर्मियों के दिनों में मैं स्कूल से घर जा रहा था । रास्ते में मुझे प्यास लगी । एक दोस्त का घर रास्ते के एक खेत पर पड़ता था । घर पर कोई नहीं था तो उस सहपाठी दोस्त ने उसे मटके से पानी पिला दिया। उनके हिसाब से किसी ने उन्हें देखा भी नहीं । रात को करीब दस पन्द्रह लोग लाठियां लेकर उसके घर आ गए । उन्होंने उसके बाप को कहा कि तूने अपने बेटे को क्या सिखाया है ? ये इतना भी नहीं जानता कि पानी कहां से पीना चाहिये कहां से नहीं ।

तो लल्लू अपनी आठवीं तक की पढ़ाई ऐसी मुश्किलें उठाते हुए 5 कि.मी. दूर के स्कूल से करता है। अब आगे की पढ़ाई के लिए इसे नजदीकी शहर में जाना है । उसके लिए ये शहर में अपने किसी रिश्तेदार के घर जाता है । वे लोग इसके आने से खुश होते हैं कि उनकी बेगार करने के लिए एक आदमी आ गया है । इस बच्चे को अपनी खाट बिछाने भर के लिए कोठरी में जगह मिल जाती है । वहीं इसकी किताबें रखी हैं और यह पढ़ रहा है । इसे शौक बहुत है पढ़ने का लेकिन न तो कोई सुविधा है और न सहारा । किसी तरह लल्लू बी.ए. कर लेता है । अब इस पर घर वालों का बड़ा भारी दबाव है कि ये नौकरी करे क्योंकि उन्होंने इसे अपना पेट काटकर पढ़ाया है । उसके मां बाप ने ज्यादा मजदूरी की है, कम खाया है और बीमारी में और ज्यादा मुश्किल उठायी हैं । अब लल्लू को सिर्फ रोजगार चाहिये ।

खदान मजदूरों के बच्चों की पाठ्यपुस्तकों में उनकी जिन्दगी से जो साम्य मिलता है, वह नकारात्मक साम्य है । मोहन की घर से लेकर नौकरी तक की झलक सकारात्मक है । मेरी बदकिस्मती के दुरभिचक्र को तोड़ने के लिए तो कोई प्रेरणा है ही नहीं । जब 1908में गांधीजी ने 'हिन्द स्वराज' में किसानों का पक्ष लेते हुए ये कहा कि इन्हें साक्षरता से क्या फायदा होगा तो यह एक सकारात्मक सादृश्य ढूंढने की कोशिश थी, जो बुनियादी शिक्षा के रूप में आगे बढ़ी और इसका 'नयी तालीम' नामकरण तो बाद का, 1936–37 का है ।

दूसरी कहानी है मोहन की । कुछ ऐसे जैसे जिन रिश्तेदारों के पास लल्लू शहर में रहा, मोहन उन्हीं का बेटा हो । यह मध्यवर्गीय नौकरी पेशा परिवार है । मोहन को सारी सुविधाएं हैं, उसके लिए पढ़ने को अलग कमरा है । जो लोग मोहन के पिता के पास आते हैं, वे उसका मार्गदर्शन और उत्साहवर्धन करते रहते हैं । उसके लिए घर से स्कूल और उससे बाहर की पूरी दुनियां जानी पहचानी है, ये जान पहचान बहुत महत्व की चीज है । मोहन के लिए यह भी अचंभे की बात नहीं है कि नौकरी कैसे मिलेगी । मोहन के साथ हर चीज ठीकठाक है जो लल्लू के साथ नहीं है ।

लल्लू के पास संसाधनों का अभाव है । उसे एक स्थिति से दूसरी स्थिति में जाने पर झटका लगता है क्योंकि नयी स्थिति उसके लिए अपरिभाषित है । वह नहीं जानता कि उससे कैसे जूझा जाये ? उसका कोई मार्गदर्शक भी नहीं है । लल्लू और मोहन की क्षमता में भी फर्क है । मोहन जब बी.ए. करता है तो वह मैदान में उतरे खिलाडी की तरह उत्साहित एवं ताजा दम है जबकि लल्लू इसी बाधा दौड़ को पार करता यहां तक पहुंचने में थक गया है । ये फर्क है जीवन की इस दौड़ का जिसका जिक्र मंडल आयोग की रिपोर्ट में मिलता है ।

खदान मजदूरों के बच्चों की पाठ्यपुस्तकों में उनकी जिन्दगी से जो साम्य मिलता है, वह नकारात्मक साम्य है । मोहन की घर से लेकर नौकरी तक की झलक सकारात्मक है । मेरी बदकिस्मती के दुरभिचक्र को तोड़ने के लिए तो कोई प्रेरणा है ही नहीं । जब 1908में गांधीजी ने 'हिन्द स्वराज' में किसानों का पक्ष लेते हुए ये कहा कि इन्हें साक्षरता से क्या फायदा होगा तो यह एक सकारात्मक सादृश्य ढूंढने की कोशिश थी, जो बुनियादी शिक्षा के रूप में आगे बढ़ी और इसका 'नयी तालीम' नामकरण तो बाद का, 1936-37 का है ।

जब हम जामिया की बात करते हैं तो एक बात मैं आपको बता दूं कि अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी से जामिया पैदा हुई । शिक्षा का सवाल वहां भी उठाया गया कि इस शिक्षा से हम क्या हासिल करते हैं, अंगरेज की नौकरी करते हैं । एक मशहूर शायर थे अकबर इलाहबादी, आपने नाम सुना होगा, उनका एक शेर 1920 में बड़ा मशहूर हुआ।

'क्या कहें अहबाव क्या कारे नुमायां कर गये ।
बी. ए. हुए नौकर हुए पेंशन मिली और मर गये ।

हमारे साथियों ने क्या-क्या बड़े कारनामे किये, बी. ए. की, नौकर हुए, पेंशन मिली और मर गये । कहने का मतलब ये था कि ये जो हमने शिक्षा हासिल की, इससे हमें क्लर्की तो मिल गई पर और कुछ नहीं मिला । और क्या इससे पहले हमारे पास कुछ भी नहीं था । तो एक और शायर ने कहा,

कि न पढ़ते तो सौ तरह खाते कमाकर
ये खोए गये और तालीम पाकर ।'

ये 'कुछ खो जाने' का जो बोध था, यह बाज लोगों में बहुत ज्यादा पैदा हुआ और उसमें बहुत-सी खराबियां जब निकाली गयीं तो एक खराबी ये थी कि मादरे जुबान को हमने निकाल दिया। उन्होंने चुनौती दी कि जो चीज अंग्रेजी में हम दस साल में सीखते हैं उसे अपनी भाषा में सात साल में सीखा जा सकता है । मादरी जुबान में पढ़ना और समझना आसान है ।

ये 'कुछ खो जाने' का जो बोध था, यह बाज लोगों में बहुत ज्यादा पैदा हुआ और उसमें बहुत–सी खराबियां जब निकाली गयीं तो एक खराबी ये थी कि मादरे जुबान को हमने निकाल दिया उन्होंने चुनौती दी कि जो चीज अंग्रेजी में हम दस साल में सीखते हैं उसे अपनी भाषा में सात साल में सीखा जा सकता है । मादरी जुबान में पढ़ना और समझना आसान है ।

माफ कीजिए, यहां अंग्रेजी भाषा की बात नहीं हो रही, शिक्षण-माध्यम की बात हो रही है। अंग्रेजी भाषा ज्ञान और अनुभव का खजाना है, इस पर कोई एतराज नहीं है । मगर अंग्रेजियत की बात और है । इस पर भी एक शेर है । एक साहब अलीगढ़ में पढ़ाते थे । उर्दू जुबान उनकी मादरी थी मगर उर्दू को नकार कर उन्होंने अंग्रेजी अपने ऊपर थोप ली थी । तो ख्बाव भी उन्हें अंग्रेजी में दिखायी देते थे । उनके बारे में कहा गया कि

पैदा हुए थे आप तो लंदन के वास्ते ।
बदकिस्मती थी बाप हिन्दी बना लिया ।

अब ये कितनी बड़ी बदकिस्मती है कि आपका बाप यहां पैदा हुआ वरना आप तो वहीं के थे । और मजा देखिए कि जब ये शेर उन्हें सुनाया गया तो उन्हें यह अपने लिए ठीक ही लगा । इसमें कोई व्यंग्य या मजाक उन्हें नजर नहीं आया ।

1920 में जब खिलाफत आन्दोलन और असहयोग आन्दोलन में समझौता हुआ तो उछाल में काशी विद्यापीठ, गुजरात विद्यापीठ और जामिया मिलिया ये सब निकलकर आये । यहां मैं थोड़ा विषयान्तर करूंगा । जामिया का खर्चा खिलाफत कमैटी उठाती थी । खिलाफत कमेटी ने ही इसके लिए वित्त जुटाया था और इसका खर्चा उठाने की जिम्मेदारी ली थी । तीन साल बाद 1923 में जब खिलाफत आन्दोलन खत्म हो गया तो उन्होंने कहा कि अब हम जामिया को नहीं चलायेंगे, इसे बंद कर दीजिए । ये बात गांधीजी के सामने रखी गयी कि जामिया को तो बंद कर दिया जाएगा। गांधी जी ने कहा कि ये तो बुरी बात है । उन्होंने अपनी ओर से प्रस्ताव दिया कि मैं जामिया के लिए एक साल भीख मांग लूंगा । अब ये बताइये, आप लोग कितने साल मांग लेंगे । तो दो और लोगों, मुख्तार अहमद असांरी और हकीम अजमल खां ने कहा कि हम तीन साल और जामिया को चला लेंगे । कोई ग्यारह लोग ऐसे निकल आये जिन्होंने कहा कि हम कुछ समय वगैर तनख्वाह लिये जामिया में काम करेंगे । इसके बाद जब जामिया के लिए अच्छी खासी रकम इकट्ठी हो गयी तो इन्होंने संकल्प व्यक्त किया कि हम बीस साल सिर्फ 150 रुपये महीने में काम करेंगे । इस तरह गांधी जी से जो चीज शुरू हुई, उसे पूरे समूह ने अपना लिया। आज भी बहुत सी शिक्षा-संस्थाएं इस तजुर्बे से सबक ले सकती हैं ।

डा. जाकिर हुसैन को ये बात काफी बुरी लगी कि जामिया को खिलाफत समिति चलाती है जब खिलाफत की सियासत खत्म हुई तो जामिया जैसा शिक्षा प्रयोग भी खतरे में पड़ गया । तो

जाकिर साहब ने कहा कि शिक्षा और राजनीति को अलग रखना चाहिए । दोनों चीजें कुछ भिन्न हैं । राजनीति, अच्छी राजनीति जो आजादी के जमाने में थी, उन्होंने कहा, एक झरने की तरह होती है। जो किसी पहाडी से नीचे की ओर बहता है, कभी उसमें उबाल आ जाता है, कभी वह सूख जाता है । कभी वह तेज बहता है कभी मंद । जबकि शिक्षा का काम कुछ ऐसा है जैसे कोई मैदानी नदी, एक छोटी–सी नदी जो खामोश बहती रहती हैं तो ये अंतर उन्होने शिक्षा और राजनीति के बीच देखा ।

मोहम्मद अली ने अपने लेख में लिखा है कि शिक्षा ऐसा नहीं है कि आप एक दीवार बना दें, एक ईंट को दूसरी ईंट पर रखकर चुनते चले जाएं । वरन् ये एक पौधे की तरह है जिसकी अपनी संगति है और यह संगति बाह्य नहीं आंतरिक है ।
उन्होंने उसे अवधारणा दी 'खुदनुमु' यानी आत्म–विकास की अवधारणा । उन्होंने कहा कि पुरानी शिक्षा एक जानवर पर किताबें लाद देने की तरह है, इससे न यह बौद्धिक हो जायेगा और न शोधकर्ता ।

जाकिर साहब ने कहा कि शिक्षा और राजनीति को अलग रखना चाहिए । दोनों चीजें कुछ भिन्न हैं । राजनीति, अच्छी राजनीति जो आजादी के जमाने में थी, उन्होंने कहा, एक झरने की तरह होती है। जो किसी पहाड़ी से नीचे की ओर बहता है, कभी उसमें उबाल आ जाता है, कभी वह सूख जाता है । कभी वह तेज बहता है कभी मंद । जबकि शिक्षा का काम कुछ ऐसा है जैसे कोई मैदानी नदी, एक छोटी-सी नदी जो खामोश बहती रहती है तो ये अंतर उन्होने शिक्षा और राजनीति के बीच देखा ।

फिर जामिया आजादी के आन्दोलन से निकली । जाकिर साहब ने तो यहां तक किया कि जब लोग कहते, गांधी जी के साथ सत्याग्रह करना है और हमें जाना है, तो वे कहते कि यहां से त्यागपत्र दीजिए, तब जाइए । लेकिन इसका मतलब यह हर्गिज नहीं लिया जा सकता कि जामिया की शिक्षा भी बदल गयी। अब वह राजनीति के संदर्भ में प्रासंगिक नहीं रही बल्कि रास्ते का फर्क हो गया । बाहर के लोग भी यही कहते थे कि जामिया को इसका काम करने दो। जब आप शिक्षा का निरुपण कर रहे हैं, इसे स्वरूप प्रदान कर रहे हैं तो इसके लिए जरुरी है कि आपको स्वायत्तता मिले । एक ऐसा खामोश कोना मिले, जैसा दिगन्तर को मिला हुआ है जिसके चारों तरफ शांति है । यह राजनीति से प्रत्यक्षत: उस तरह नहीं जुड़ सकता । शिक्षा धीमी आंच पर पकने वाली खिचड़ी की तरह है, इस तरह के बिम्ब थे उस जमाने में, जिनका जामिया के संदर्भ में उल्लेख किया जाता था ।

उस समय की शिक्षा की बुनियादी आलोचना यह थी कि इस शिक्षा में सिर्फ अक्षर दिए जाते हैं, साक्षरता है, इसमें चीजें ऊपर से थोप दी जाती हैं, रटा दी जाती हैं । एक शिक्षाविद् का कहना था कि यह 'नेक अप एजुकेशन' है जिसमें चीजें गर्दन के ऊपर से शुरू होती है, गर्दन के नीचे वाले हिस्से से इस शिक्षा का कोई मतलब नहीं है । तो बुनियादी शिक्षा के लिए कहा गया कि ये गर्दन से नीचे के लिए भी होगी । इसमें हाथ का काम होगा लेकिन ऐसे नहीं होगा जैसे कोल्हू में होता है । हाथ के काम का यहां वो मतलब नहीं है, आपको कोल्हू का बैल नहीं बनना है। बल्कि इसमें जहां उत्पादन की बात है, वहां सोच और शिक्षा की बात भी है । ये दोनों चीजें आपस में जुड़ी हुई हैं । इस सिलसिले में एक बिम्ब मेरे दिमाग में आया । मोहम्मद अली ने अपने लेख में लिखा है कि शिक्षा ऐसा नहीं है कि आप एक दीवार बना दें, एक ईंट को दूसरी ईंट पर रखकर चुनते चले जाएं । वरन् ये एक पौधे की तरह है जिसकी अपनी संगति है और यह संगति बाह्य नहीं आंतरिक है ।

उन्होंने उसे अवधारणा दी 'खुदनुमु' यानी आत्म-विकास की अवधारणा । उन्होंने कहा कि पुरानी शिक्षा एक जानवर पर किताबें लाद देने की तरह है, इससे न यह बौद्धिक हो जायेगा और न शोधकर्ता । एक फारसी शे'र को उद्धृत करते हैं :

'चारपाये बिन किताबें चल
न मुहकसबन न दानिशमंद'

खच्चर की पीठ पर आपने किताबें रख दीं । तो इससे तो वो कुछ भी नहीं हुआ । अभी बच्चों के बस्ते के बोझ की बात होती है ये सिर्फ बस्ते का बोझ नहीं है बल्कि उन किताबों से जो नासमझी पैदा हो रही है उसका बोझ है ।

जामिया में जो नयी शिक्षा शुरू हुई उसके बारे में बहुत कुछ लिखा गया है । लेकिन 1920 से 1941 के दौरान लिखा गया एक आत्मकथात्मक वृत्तान्त इनमें बहुत महत्वपूर्ण है । ये दो खंडों में है - एक मौल्लिक की जिंदगी, मौल्लिक यानी मास्टर । इसका जो मुखपृष्ठ है उस पर एक बूढ़ा

आदमी छपा है जिसके सामने चार-पांच बच्चे बैठे हुए हैं, एक बच्चा उसके कंधे पर चढ़ा हुआ है । ये कुछ बता रहा है, या शायद कोई कहानी सुना रहा है। पृष्ठभूमि में स्कूल की इमारत है और इसमें दिखाए पेड़ ज्यादा गहरे हैं । बच्चे हल्के रंगों में हैं । रंगों का यह संदर्भ बहुत महत्वपूर्ण है। ऐसा लगता है कि शाम ढल रही है और सुनायी गयी कहानी का जो जादू था, वह शायद उस बड़े जादू में घुल रहा है । दोनों खंडों के मुखपृष्ठ पर यही एक चित्र है । यह मूलत: शिक्षा का जादू है । उस जादू के अंदर रहते हुए भी आप अपनी नजरों से दुनियां को देख सकते हैं । इस मुखपृष्ठ पर छात्र और शिक्षक का जो रिश्ता एक समुदाय की शक्ल में दिखाई देता है, वह बहुत अहम् है।

इसके बाद उस्ताद (शिक्षक) और शिष्यों ने लिखना शुरू किया । एक उस्ताद अब्दुल गफ्फार मधुबनी के बारे में उनके एक शिष्य ने लिखा है कि वे हमारे बाप की तरह थे । शिक्षा का समाजशास्त्र इस बात की ताईद करता है कि स्कूल एक परिवार की तरह होना चाहिए । बच्चा जब प्राइमरी स्कूल में जा रहा है तो पीछे कहीं कुछ छूट भी रहा है । इसकी अगर रचनात्मक तरीके से भरपाई करनी है तो शिक्षक को परिवार जैसी भूमिका निभानी पड़ेगी ।

शिक्षण विधि की यह मजबूत बुनियाद हो सकती है । यह बात 'एक मौल्लिक की जिन्दगी' के मुखपृष्ठ से झलकती है ।

जामिया में बच्चे छात्रावास में रहते थे । वहां भी उनका यही अनुभव था । छात्रावास का जो वार्डन था, वह आज के वार्डन की तरह नहीं था । उस वार्डन की भूमिका स्थानीय संरक्षक जैसी थी। 'जामिया नगर के बच्चे' 1930 में लिखा गया लेख है । उसमें बच्चों के बारे में वार्डन की जो जानकारी मिलती है उतनी तो मुझे खुद अपनी बच्ची के बारे में नहीं है । ये बच्चा नाखून काटता है । इस बच्चे से जब कहते हैं, तभी हाथ धोता है । मैंने ये देखा कि ये बच्चा अपनी चप्पल नहीं पहनता, औरों की चप्पल पहनकर चला जाता है । बच्चों के बारे में इस तरह की तफसील इन लेखों में मिलती हैं । ऐसे ही पुरातात्विक लेखों से 1930-40 के दरमियान के दो प्रसंग और आपको सुनाता हूं ।

जब मैं खदान मजदूरों के बच्चों के स्कूल में अवलोकन कर रहा था तो शिक्षक तो अपनी चिट्ठी लिख रहे थे । बच्चे थोड़ी थोड़ी देर में आपस में झगड़ रहे थे । उन्होंने एक दूसरे के नाम रखे हुए था, कोई किसी को कुत्ता कहता और कोई बिल्ली, इस तरह एक दूसरे को चिढ़ाते । बच्चे कंचे खेलते थे, कंकड़ों से खेलते थे, जोर से चीखते थे, कोई किसी की टांग खींच लेता था । यह नाटक कक्षा में बराबर चलता रहता था । चिट्ठी ठीक से लिख पाने के लिए बच्चों को शांत करने की जरूरत पड़ती थी या मुझसे बात करने में व्यवधान होता था तो शिक्षक एक डंडे से बच्चों पर बारिश कर देता था और बच्चे अगले पन्द्रह मिनिट के लिए खामोश हो जाते थे ।

जामिया में 1940 के समय के वार्डन का जो किस्सा मैं आपको सुना रहा हूँ । अब जरा ऊपर के प्रसंग से इसकी तुलना कीजिए । छात्रावास में 40 बच्चे थे । एक दिन जब वे उठे तो उन्होंने देखा कि उनके चप्पल की तनियां ब्लेड़ से काट दी गयी हैं । ये रबर के चप्पल थे जिनमें से अधिकांश की तनी काट दी गयी थी । उस समय चप्पलों की भी खासी अहमियत हुआ करती थी और एक बार खरीदी चप्पल साल भर चलती थी । वार्डन ने सोचा कि यह कैसे पता चले कि यह किसकी कारगुजारी है । आज की स्थिति में कहें तो शिक्षकों के पास इसका तरीका मौजूद है। आप दस पन्द्रह बच्चों की कसकर पिटाई कर दीजिए, इसमें एक न एक को तो जरुर पता होगा और वह बता देगा कि यह किसने किया है। पुलिस का तरीका भी शायद यही होता है। अगर कहीं दंगा हो जाये तो उस इलाके को घेर लीजिए और बेरहमी से लोगों की ठुकाई शुरु कर दीजिए, असली दंगाइयों का पता चल जायेगा । कई अर्ध सैनिक बलों की भी यही कार्यपद्धति है ।

इसके बाद उस्ताद (शिक्षक) और शिष्यों ने लिखना शुरू किया । एक उस्ताद अब्दुल गफ्फार मधुबनी के बारे में उनके एक शिष्य ने लिखा है कि वे हमारे बाप की तरह थे। शिक्षा का समाजशास्त्र इस बात की ताईद करता है कि स्कूल एक परिवार की तरह होना चाहिए । बच्चा जब प्राइमरी स्कूल में जा रहा है तो पीछे कहीं कुछ छूट भी रहा है । इसकी अगर रचनात्मक तरीके से भरपाई करनी है तो शिक्षक को परिवार जैसी भूमिका निभानी पडेगी ।

'जामिया नगर के बच्चे' 1930 में लिखा गया लेख है । उसमें बच्चों के बारे में वार्डन की जो जानकारी मिलती है उतनी तो मुझे खुद अपनी बच्ची के बारे में नहीं है । ये बच्चा नाखून काटता है । इस बच्चे से जब कहते हैं, तभी हाथ धोता है । मैंने ये देखा कि ये बच्चा अपनी चप्पल नहीं पहनता, औरों की चप्पल पहनकर चला जाता है । बच्चों के बारे में इस तरह की तफसील इन लेखों में मिलती हैं ।

वार्डन ने कहा कि चलो मिलकर बैठते हैं और विचार करते हैं कि ये कैसे हुआ ? यह तय किया गया कि इस दौरान कोई दूसरी और बात नहीं करेंगे और ये साचेंगे कि आखिर ऐसा हुआ क्यों ? दरवाजा बंद कर दिया गया और ये कहा गया कि यहां से अब हम न उठकर जायेंगे और न खाना खायेंगे । बस ये सोचेंगे कि ये हुआ कैसे ? बड़ा अजीब सा सवाल था। अब कुछ बात आपस में चलनी शुरू हुई । लोग विचार करने लगे । यह भी कह दिया गया कि जिसने यह किया है, पता चलने पर भी उसके साथ कुछ नहीं किया जायेगा । ठीक है उसने किया, उसकी सोच थी पर वह ये जरूर बतायेगा कि उस सोच का आधार क्या था ? रात के दो बजे एक बच्चा रोने लगा। उसने स्वीकार कर लिया। उसका कहना था कि उसके बोलने चालने में कुछ खराबी थी, तुतलाकर बोलता था । इस कारण सब बच्चे अक्सर उसका मजाक उड़ाते थे । उन्हें सबक सिखाने के लिए उसने ऐसा किया । उसके मान लेने पर कहा गया, अच्छा तो अब ये बताओ कि इसका समाधान क्या है : बच्चे ने कहा, समाधान ये हो सकता है कि मेरा एक महीने का जेब खर्च काट लिया जाय। समाधान बच्चे ने ही बताया। इस बच्चे के बारे में बताया गया कि बाद में यह जामिया की फैकल्टी में शामिल हुआ। इसकी ड्राइंग बहुत अच्छी थी, 20 साल बाद ये वहां कला-शिक्षक बना।

नियंत्रण का यह तरीका तो सीधा सादा है कि आप मारिये, पीटिये या ऐसा ही कुछ कीजिए। बच्चों को आत्म-अनुशासन सिखाना, कैसे वे खुद अनुशासित रहें, यह कठिन काम है क्योंकि यह एक आन्तरिक प्रक्रिया है । शिक्षक तो यहां सिखाने का माध्यम है । बच्चे जब खुद समझ कर सीखते हैं तो ये जरूरी हो जाता है कि शिक्षण-प्रक्रिया में वे खुद भागीदार भी बनें । जामिया में ये समझ थी कि यदि ऐसा नहीं होगा तो ये फिर आजादी की लडाई के सिपाही कैसे बनेंगे या आजादी कैसे लायेंगे ? ये जुमला उस समय के लेखों और दस्तावेजों में बार-बार मिलता है ।

एक आम सा तरीका था जामिया में कि अगर मेरी कक्षा में किसी ने गलती की है तो गलती करने वाले को सजा नहीं दी जायेगी । शिक्षक ये कहेगा कि भाई गलती तुम्हारी नहीं, गलती तो मेरी है । मैं आज खाना नहीं खाऊंगा, कल का भी नहीं खाऊंगा । गलती करने वाला शिक्षक के पास आता और उसे समाधान बताता । शिक्षक आश्वस्त होता कि ऐसे ही चलेगा, या आइंदा बेहतर होगा। नियंत्रण का यह तरीका तो सीधा सादा है कि आप मारिये, पीटिये या ऐसा ही कुछ कीजिए। बच्चों को आत्म-अनुशासन सिखाना, कैसे वे खुद अनुशासित रहें, यह कठिन काम है क्योंकि यह एक आन्तरिक प्रक्रिया है । शिक्षक तो यहां सिखाने का माध्यम है । बच्चे जब खुद समझ कर सीखते हैं तो ये जरूरी हो जाता है कि शिक्षण-प्रक्रिया में वे खुद भागीदार भी बनें । जामिया में ये समझ थी कि यदि ऐसा नहीं होगा तो ये फिर आजादी की लडाई के सिपाही कैसे बनेंगे या आजादी कैसे लायेंगे ? ये जुमला उस समय के लेखों और दस्तावेजों में बार-बार मिलता है ।

खुद सीखने के बहुत से तरीके थे जिसको हम आज की शिक्षा की भाषा में सहसंबंध (कोरिलेशन) कहते हैं । सह संबंध का तरीका तो ये होता है कि शिक्षक बात में बात मिलाता हुआ आगे बढ़े । मगर सिर्फ बात में बात मिलाना ही सहसंबंध नहीं है। गांधी जी और जाकिर हुसैन वाली नयी तालीम के सहसंबंध में एक तरफ बात होती थी और दूसरी तरफ काम होता था कि कैसे आप बात को काम से जोड़ते हैं ? और ये काम और बात वे थीं जिनसे बच्चे परिचित होते थे । हालांकि बात से बात को जोड़ने की भी मनाही नहीं थी बल्कि दोनों तरीके काम में लिए जाते थे ।

एक शिक्षक अपने अनुभव के बारे में लिखता है कि मुझे बादलों के बारे में पढ़ाना था । बरसात का मौसम था । उसने बच्चों से कहा, पाठ्यपुस्तक के पाठों को दिए गए क्रम से किसी भिन्न क्रम में बदलो। बच्चों ने मौसम के हिसाब से भी क्रम निर्धारित किया । तब बादलों का पाठ पढ़ाया गया । यह एक उदाहरण है ।

दूसरी फ्रेजिक (अंश) पद्धति में खुद सीखने के अनेक प्रोजेक्ट थे । बच्चे किस सामाजिक परिवेश से आये हैं और उन्हें क्या अच्छा लगता है ? इन प्रोजेक्टों की थीम का आधार इस बात को बनाया जाता था । जो चीज बच्चों के लिए जानी-पहचानी मानी गयी, उसी से बात शुरु की गयी। अब मैं आपको एक अजीब सा प्रसंग बताता हूं । बच्चे से पूछा गया कि ये बताओ अपने जीवन में तुम सबसे ज्यादा किसे मानते हो ? ये मुस्लिम बच्चे थे । इन्होंने कहा कि हजरत मुहम्मद जो पैगम्बर है, हम तो उन्हें सबसे बड़ा मानते हैं । तो शिक्षकों के सामने चुनौती रखी गयी । क्या

इतिहास का शिक्षक इस बात को शामिल करते हुए इतिहास पढ़ा सकता है ? क्या भूगोल का शिक्षक इसे संदर्भित करते हुए भूगोल पढ़ा सकता है ? जामिया में 'मीलीजुल नबी' का ये प्रोजेक्ट चला। 'मीलीजुल नबी' प्रोजेक्ट के आज के मायने तो ये हैं कि हजरत मोहम्मद की तारीफ कीजिए, गाने गाइये, मिल बैठिये, बस भजन जैसे होता है, उससे आगे की बात नहीं । लेकिन जामिया में इससे और चीजें निकाली गयीं ।

भूगोल के शिक्षक ने पाठ तैयार किया । बच्चों से पूछा जायेगा कि पैगम्बर मोहम्मद कहां पैदा हुए थे ? क्या दुनियां के नक्शे में वह जगह दिखा सकते हो ? इस नक्शे में हिन्दुस्तान कहां है ? हजरत मुहम्मद के जन्म स्थान तक जाने के समुद्री मार्ग, भूतल मार्ग कौन-कौन से हैं ?

इतिहास के शिक्षक ने इस प्रसंग को संदर्भित करके इतिहास का पाठ तैयार किया कि अरब और हिन्दुस्तान के बीच क्या संबंध थे ? ऐसे प्रश्नों से उन्होंने शुरुआत की । नैतिक शिक्षा के शिक्षक ने चुनौती को दूसरी तरह लिया । उन्होंने इस तरह शुरु नहीं किया कि इस्लाम में क्या चीज अच्छी है और क्या बुरी ? आजादी के आन्दोलन का जो मकसद है, उसमें क्या चीजें तुम्हें सबसे अच्छी लगती हैं ? बच्चों ने कहा, बराबरी बहुत अच्छी चीज है, सामाजिक न्याय बहुत अच्छी चीज है तो यह बताओं कि हजरत मोहम्मद की जिंदगी में ये चीजें मिलती हैं क्या और मिलती हैं तो इन्हें अलग निकाल कर रखो । फिर ये बताओ कि क्या इन पर आप लोग अमल करते हो या ये केवल बातें ही बातें हैं ।

एक और प्रोजेक्ट बहुत लोकप्रिय हुआ था। 1919 में जलियान वाला बाग कांड हुआ था। 1920 से 1923 तक ऐसे बहुत सारे लोग जानकारी में थे जिनके दोस्त या रिश्तेदार जलियान वाला में शहीद हुए थे । कौमी हफ्ता मनाना तो बहुत बाद में शुरु हुआ । शुरू में 13 अप्रैल के दिन जलियान वाला बाग को याद किया जाता था । पहले तो याद करने का तरीका यह था कि बड़े-बड़े नेताओं को बुलाकर उनके भाषण कराये जाते थे । जलियान वाला कांड का वर्णन किया जाता था और अंग्रेजों के खिलाफ नफरत का इजहार किया जाता था । तो शिक्षा के संस्थान में इसका क्या महत्व है, इस पर लोगों ने चर्चा शुरू की । उन्होंने कहा कि ये भाषण बाजी तो शिक्षा नहीं है । इसको शिक्षा के संदर्भ में कैसे प्रासंगिक बनाया जाये ? चर्चा में सवाल उठा कि इन लोगों ने अपनी जाने क्यों दी ? ये किस चीज के लिए लड़ रहे थे ? जबाव आया कि आजादी के लिए, बराबरी के लिए लड़ रहे थे ? तब सोचा गया कि ऐसा करते हैं, अब हम जलियान वाला बाग को उस कांड के संदर्भ से याद नहीं करेंगे, बल्कि उन सिद्धांतों की पहचान कर ली गयी; तो सवाल उठा कि इन सिद्धांतों को शिक्षा के कार्यक्रम में कैसे रुपान्तरित करेंगे ?

उन्होंने कहा कि ये भाषण बाजी तो शिक्षा नहीं है । इसको शिक्षा के संदर्भ में कैसे प्रासंगिक बनाया जाये? चर्चा में सवाल उठा कि इन लोगों ने अपनी जाने क्यों दी ? ये किस चीज के लिए लड़ रहे थे? जबाव आया कि आजादी के लिए, बराबरी के लिए लड़ रहे थे ? तब सोचा गया कि ऐसा करते हैं, अब हम जलियान वाला बाग को उस कांड के संदर्भ से याद नहीं करेंगे, बल्कि उन सिद्धांतों की पहचान कर ली गयी; तो सवाल उठा कि इन सिद्धांतों को शिक्षा के कार्यक्रम में कैसे रुपान्तरित करेंगे ?

तब एक कार्यक्रम तैयार किया गया । बराबरी का प्रदर्शन किस चीज में हो सकता है ? इस सवाल से अगला सवाल निकला कि हमारे स्कूल में काम कौन-कौन से होते हैं ? ऐसे कामों की सूची बनायी गयी -खाना पकाया जाता है, सफाई की जाती है, पानी लाया जाता है, बाजार से सब्जी लायी जाती है । एक सप्ताह को कौमी सप्ताह के रूप में चयनित किया गया। यह तय किया गया कि इस सप्ताह जो लोग इन कामों को करते हैं उनकी सबकी छुट्टी कर दी जायेगी और खुद बच्चे ये सारे काम करेंगे । शाम को इन कामों की रिपोर्टिंग की जाती थी । बहुत उत्साह से तीसरे-चौथे दशक तक ये कार्यक्रम मनाया जाता और सातवें दशक तक ये मनाया जाता रहा जिसमें मैं भी हिस्सा लेता था और इसलिए इसकी मिटती हुई छवि मेरी यादों में रह गयी है ।

इस सप्ताह में सफाई का काम करने वाले बच्चे सबकी नजरों में नायक की तरह होते थे । उन्हें खुद भी इस काम में बहुत मजा आता था । मेरे साथियों में से जिसने यह काम किया था, उसे डा. जाकिर हुसैन ने तोहफे में झाड़ू दी थी । मगर हुआ ये कि इस कार्यक्रम के समीक्षा सत्र में जब

सब लोग मिलकर बैठे तो एक छात्र ने कहा कि ये तो ड्रामा है । एक हफ्ते आपने सफाई कर ली, नायक बन गये पर क्या समाज में जो सफाई का काम करता है वो नायक होता है । अब सब चुप बैठ गये कि ये बात तो सही है, ये तो बहुत ही जायज सवाल उठाया गया है । तो कहा गया कि अगर यह ड्रामा है तो शिक्षा में ये नहीं चलेगा। अगर इसमें सच्चाई है तो ड्रामा के तत्वों को कम करना होगा और वास्तविकता की तरफ एक कदम और उठाना होगा । यह कहा गया कि हमारी संस्था के इर्द-गिर्द ऐसे लोग हैं जिन के पास रोजगार नहीं है, जो दिन में एक ही वक्त खाना खा सकते हैं और जहां बीमारी होती है तो दवा नहीं होती; तो कौमी हफ्ते में क्या हम इन लोगों के लिए कोई कार्यक्रम ले सकते हैं, जिसे आसपास के लोगों की बदहाली से जोड़ सकें । तो गरीब लोगों के लिये जामिया में 1930 में कपास से लेकर कपड़ा बनाने तक का ऐसा कार्यक्रम शुरु किया गया था ।

इन परियोजनाओं की एक खास बात ये है कि बच्चों को अपने किये हुए काम और अनुभव को लिखने, व्यक्त करने का मौका मिलता था । वे उस पर चर्चा भी करते थे । शिक्षक सामान्यत: यही परीक्षण करता है कि बच्चे ने दो और दो चार लिखा है या नहीं क्योंकि पाठ्यपुस्तक में यही लिखा हुआ है । इन कार्यक्रमों में बच्चे को यह मौका दिया गया कि वह दो और दो पांच भी कह सके । यदि किसी बच्चे ने ऐसा कहा तो शिक्षक उसकी बात को दरगुजर नहीं करता था। यदि कोई बच्चा कहे कि गाय लाल रंग की होती है, दूध का रंग नारंगी होता है, बच्चा सेव को फुटबाल की तरह बना दे, मिर्च को चाकू की तरह और चाकू को मूली की तरह दिखा दे, तो भी शिक्षक इसे खारिज नहीं करेगा क्योंकि इसे बच्चे ने बनाया है । बेशक, इसमें कोई नैसर्गिक सच्चाई नहीं है, लेकिन बच्चे का प्रयास है, उसकी सोच है और बिना इस प्रक्रिया से गुजरे शिक्षा नहीं हो सकती। यह बच्चे के संदर्भ में इस बात की पहचान थी कि मैं एक अनुभव से गुजरा, उसे ठीक से सूत्रबद्ध कर पाया या नहीं, सही किया या गलत किया लेकिन ये अनुभव सत्य हैं । बच्चे की समझ के विकास में ये अनुभव और उसकी कच्ची पक्की अभिव्यक्ति बहुत मायने रखती है ।

इन परियोजनाओं की एक खास बात ये है कि बच्चों को अपने किये हुए काम और अनुभव को लिखने, व्यक्त करने का मौका मिलता था । वे उस पर चर्चा भी करते थे । शिक्षक सामान्यत: यही परीक्षण करता है कि बच्चे ने दो और दो चार लिखा है या नहीं क्योंकि पाठ्यपुस्तक में यही लिखा हुआ है । इन कार्यक्रमों में बच्चे को यह मौका दिया गया कि वह दो और दो पांच भी कह सके ।

हर परियोजना में बच्चों की पूरी सहभागिता होती थी । प्रोजेक्ट कैसे किया जायेगा, इस पर बच्चों की प्रतिक्रिया शुरु हो जाती - सर ऐसे करते हैं कि ये जो सिगरेट की पन्नियां आती हैं इन्हें जमा करके कुछेक चार्ट पेपरों के ऊपर इन्हें चिपका देते हैं, एक कोलाज बनाते हैं, किसी ने कहा कि एक बल्ब लगा देते हैं । ऐसे अनेक प्रोजेक्ट जिनमें बच्चों को खुद करके सीखने के भरपूर अवसर दिये गये हैं । इनमें सही गलत के आधार पर बच्चों को रोका नहीं गया है बल्कि उनकी रचनात्मकता को पूरा सम्मान दिया गया है । बचे बड़े आराम और आनंद से अपनी तरह चीजें कर सकते थे। जब सीखने की भावना बच्चे में खुद पैदा हो जाये तो वह एक उपलब्धि होती है ।

बेशक, इसमें कोई नैसर्गिक सच्चाई नहीं है, लेकिन बच्चे का प्रयास है, उसकी सोच है और बिना इस प्रक्रिया से गुजरे शिक्षा नहीं हो सकती। यह बच्चे के संदर्भ में इस बात की पहचान थी कि मैं एक अनुभव से गुजरा, उसे ठीक से सूत्रबद्ध कर पाया या नहीं, सही किया या गलत किया लेकिन ये अनुभव सत्य हैं । बच्चे की समझ के विकास में ये अनुभव और उसकी कच्ची पक्की अभिव्यक्ति बहुत मायने रखती है ।

एक तो बच्चे का खुद सीखना, फिर औरों के अनुभव से उसे जोड़ना, उसे व्यापक संदर्भ देना जैसे जलियानवाला बाग काण्ड का संदर्भ विस्तार, जहां हम देखते हैं कि किस तरह बात से बात आगे बढ़ती है और फिर कहां से कहां पहुंच जाती है पर शिक्षा का सिद्धांत जिन्दा रहता है। बागवानी और मिट्टी के काम जैसे अनेको प्रोजेक्ट थे जिनमें चीजें बच्चों को जानी पहचानी थी, जिनका बच्चों से सीधा संबंध या, इनके बारे में बच्चों को सहभागिता का पूरा अवसर मिलता था, साथ ही कौशल विकसित होता था ।

नयी तालीम को लेकर जो शब्द मेरे दिमाग में हैं । एक तो प्रतिबिम्बन (रिफ्लेक्टिविटी) है यानी मेरी सोच और मेरे अनुभव और इन दोनों के टकराव से जो मैं दूसरों से शेयर करता हूं, यह प्रतिबिम्बन है । इसमें मैं ने कुछ किया, मैं ने बात आगे बढ़ाई, फिर पीछे गया, आगे आया, अनुभव चल रहा है, बयान किया जा रहा है, विकसित हो रहा है, यह प्रतिबिम्बन है ।

दूसरा, प्रासंगिकता, (रेलेवंश) जो पढ़ा जा रहा है उसकी जिन्दगी में प्रासंगिकता है । जिंदगी से हम शिक्षा की तरफ आये हैं, शिक्षा हमें ऐसा कुछ देगी जो जीवन में उपयोगी होगा। समाज में सहभागिता के जरिये मैंने सीखे हुए को, ज्ञान को जिन्दगी में प्रयुक्त किया, चाहे वह समानता का सिद्धांत हो या न्याय का - यह ड्रामा न रहे बल्कि वास्तविक हो, ठोस हो, (रियलाॅजेशन) किसी रूप में ढले, सामाजिक स्तर तक पहुंचे । जामिया में नयी तालीम के ये चार प्रमुख घटक थे ।

जामिया मिलिया इस्लामिया में शिक्षा का यह प्रयोग चला । 1937 में बुनियादी शिक्षा पर सम्मेलन हुआ । 1939 में इसकी पहली समीक्षा हुई फिर 1941 में दूसरी समीक्षा ।

बुनियादी शिक्षा की तीन बातें जो शायद कुल मिलाकर दो ही बातें हैं यानी शिक्षा का सार्वजनीनकरण किया जाये जो इसके व्यापक प्रसार की बात है । दूसरी जो उसके आन्तरिक चरित्र से संबंध रखती है, वह मातृभाषा में शिक्षा देने की बात है और विद्यार्थी को आत्मनिर्भर बनाने की बात है । उर्दू में इसे 'खुद कबील' (आत्म निर्भर) कहते हैं । वे सारी खुद सीखने वाली परियोजनाएं जो हस्तकार्य से संबंधित हैं, आत्म निर्भरता से ताल्लुक रखती है जिनमें कुछ उत्पादन हो और बच्चा खुद अपनी फीस उगा सके ।

जब बुनियादी शिक्षा पर वर्धा सम्मेलन हुआ तो यह बात शिक्षाविदों के गले नहीं उतरी। उन्होंने कहा कि ये गांधी जी क्या कह रहे हैं कि बच्चे पूरी उत्पादन-प्रक्रिया का हिस्सा बनें । जब प्रशिक्षण ले रहे हों तब भी उपयोगी चीजें बनायें और उन्हें बेचा जाये । इसका मतलब तो शिक्षक 'स्लेव ड्राइवर' (गुलामों का हांकने वाले) हो जायेंगे । ये तो अच्छी बात नहीं हुई, ये शिक्षा सिद्धांतों के विपरीत है ।

डा. जाकिर हुसैन ने इसका स्पष्टीकरण दिया कि इसका अर्थ है, हस्तकार्य के जरिये सिखाना। यहां उत्पादन शिक्षा का एक तत्व है । अब तक जांत-पात के निजाम से काम ढंका हुआ था, उसकी तालाबंदी हो गयी थी । अब हमें काम को जात से निकालकर शिक्षा के संदर्भ में लाना है, इसमें निहित वैज्ञानिक सिद्धांत सिखाना है । कोशिश ये करनी है कि काम आगे बढ़े और तरक्की करे। इस पर जो छुआछूत का धब्बा लगा है, इस की परिभाषा से जो हीनता जुड़ी है वह न रहे । काम एक सृजनात्मक सिद्धांत बन जाये और बच्चे को किसी यांत्रिक चक्र में न डाल दे । 1948 में जामिया को राज्य परिषद का दर्जा मिल गया और शिक्षकों के नये वेतनमान निर्धारित हो गये ।

शिक्षा की संस्था के लिए सामान्यत: दो ही प्रेरणाएं होती हैं । एक तो राज्य जो उसे संचालन में वित्तीय मदद देता है । दूसरे बाजार यदि शिक्षा संस्थान के पाठ्यक्रम औद्योगिक और व्यावसायिक घरानों के लिए लाभकारी हों । दोनों ही स्थितियों में शिक्षा संस्थाएं विद्यार्थियों को नौकरी के लिए तैयार करती है ।

लेकिन तीसरी प्रेरणा बिल्कुल भिन्न है जिसमें विद्यार्थियों को आत्मनिर्भर बनाना है । जो स्वतंत्र रूप से अपनी आजीविका कमा सकें । बुनियादी शिक्षा और नयी तालीम का यही मकसद था । आत्मनिर्भरता प्रदान करने वाली इस शिक्षा की आज भी प्रासंगिकता है । आज हम बाल-श्रम के उन्मूलन की बात करते हैं, बच्चों को दोपहर के भोजन का प्रावधान करते हैं । 'नयी तालीम' के रूप में कई दशक तक चला एक शिक्षा-प्रयोग लिखित रूप में आज भी हमारे बीच मौजूद है। इन बातों को 1948 के बाद धीरे-धीरे भुला दिया गया। आज हम जिस व्यावसायिक शिक्षा की बात करते हैं, वह दूसरे दर्जे की शिक्षा है । उसमें बुनियादी तालीम की आत्मा नहीं है । ◆

उन्होंने कहा कि ये भाषण बाजी तो शिक्षा नहीं है । इसको शिक्षा के संदर्भ में कैसे प्रासंगिक बनाया जाये? चर्चा में सवाल उठा कि इन लोगों ने अपनी जाने क्यों दी ? ये किस चीज के लिए लड़ रहे थे? जबाव आया कि आजादी के लिए, बराबरी के लिए लड़ रहे थे ? तब सोचा गया कि ऐसा करते हैं, अब हम जलियान वाला बाग को उस कांड के संदर्भ से याद नहीं करेंगे, बल्कि उन सिद्धांतों की पहचान कर ली गयी; तो सवाल उठा कि इन सिद्धांतों को शिक्षा के कार्यक्रम में कैसे रुपान्तरित करेंगे ? प्रासंगिकता, (रेलेवंश) जो पढ़ा जा रहा है उसकी जिन्दगी में प्रासंगिकता है। जिंदगी से हम शिक्षा की तरफ आये हैं, शिक्षा हमें ऐसा कुछ देगी जो जीवन में उपयोगी होगा । समाज में सहभागिता के जरिये मैंने सीखे हुए को, ज्ञान को जिन्दगी में प्रयुक्त किया, चाहे वह समानता का सिद्धांत हो या न्याय का – यह ड्रामा न रहे बल्कि वास्तविक हो, ठोस हो, (रियलाॅजेशन) किसी रूप में ढले, सामाजिक स्तर तक पहुंचे । जामिया में नयी तालीम के ये चार प्रमुख घटक थे ।